जैन अध्यात्म

पदार्थस्थिति

'नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः' जगत्में जो सत् है उसका सर्वथा विनाश नहीं हो सकता और सर्वथा नए किसी असत्का सद्रूपमें उत्पाद नहीं हो सकता। जितने मौलिक द्रव्य इस जगत्में अनादिसे विद्यमान हैं वे अपनी अवस्थाओंमें परिवर्तित होते रहते हैं। अनन्तजीव, अनन्तानन्त पुद्गलअणु, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश और असंख्य कालाणु, इनसे यह लोक व्याप्त है। ये छह जातिके द्रव्य मौलिक हैं, इनमेंसे न तो एक भी द्रव्य कम हो सकता और न कोई नया उत्पन्न होकर इनकी संख्यामें वृद्धि कर सकता है। कोई भी द्रव्य अन्यद्रव्यरूपमें परिणमन नहीं कर सकता, जीव जीव ही रहेगा, पुद्गल नहीं हो सकता। जिस तरह विजातीय द्रव्यरूपमें किसी भी द्रव्यका परिणमन नहीं होता उसी तरह एक जीव दूसरे सजातीय जीव-द्रव्यरूप या एक पुद्गल दूसरे सजातीय पुद्गलद्रव्यरूपमें सजातीय परिणमन भी नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायों-अवस्थाओंकी धारामें प्रवाहित है किसी भी विजातीय या सजातीय द्रव्यान्तरकी धारामें उसका परिणमन नहीं हो सकता। यह सजातीय या विजातीय द्रव्यान्तरमें असंक्रान्ति ही प्रत्येक द्रव्यकी मौलिकता है। इन द्रव्योंमें धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्योंका परिणमन सदा शुद्ध ही रहता है, इनमें विकार नहीं होता, एक जैसा परिणमन प्रतिसमय होता रहता है। जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें शुद्धपरिणमन भी होता है तथा अशुद्ध परिणमन भी। इन दो द्रव्योंमें क्रियाशक्ति भी है जिससे इनमें हलन-चलन, आना-जाना आदि क्रियाएँ होती हैं। शेष द्रव्य निष्क्रिय हैं वे जहाँ हैं वहीं रहते हैं। आकाश सर्वव्यापी है। धर्म और अधर्म लोकाकाशके बराबर हैं। पुद्गल और काल अणुरूप हैं। जीव असंख्यातप्रदेशी हैं और अपने शरीरप्रमाण विविध आकारोंमें मिलता है। एक पुद्गलद्रव्य ही ऐसा है जो सजातीय अन्य पुद्गलद्रव्योंसे मिलकर स्कन्ध बन जाता है और कभी-कभी इतना रासायनिक मिश्रण हो जाता है कि उसके अणुओंकी पृथक् सत्ताका भान करना भी कठिन होता है। तात्पर्य यह कि जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्यमें अशुद्ध परिणमन होता है और वह एक दूसरेके निमित्तसे। पुद्गलमें इतनी विशेषता है कि उसकी अन्य सजातीयपुद्गलोंसे मिलकर स्कन्ध-पर्याय भी होती है पर जीवकी दूसरे जीवसे मिलकर स्कन्ध पर्याय नहीं होती। दो विजातीय द्रव्य बँधकर एक पर्याय नहीं प्राप्त कर सकते। इन दो द्रव्योंके विविध परिणमनोंका स्थूलरूप यह दृश्यजगत् है।

द्रव्य-परिणमन

प्रत्येक द्रव्य परिणामीनित्य है। पूर्वपर्याय नष्ट होती है उत्तर उत्पन्न होती है पर मूलद्रव्यकी धारा अविच्छिन्न चलती है। यही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकता प्रत्येक द्रव्यका निजी स्वरूप है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्योंका सदा शुद्ध परिणमन ही होता है। जीवद्रव्यमें जो मुक्त जीव हैं उनका परिणमन शुद्ध ही होता है कभी भी अशुद्ध नहीं होता। संसारी जीव और अनन्त पुद्गलद्रव्यका शुद्ध और अशुद्ध दोनों ही प्रकारका परिणमन होता है। इतनी विशेषता है कि जो संसारी जीव एक बार मुक्त होकर शुद्ध परिणमनका अधिकारी हुआ वह फिर कभी भी अशुद्ध नहीं होगा, पर पुद्गलद्रव्यका कोई नियम नहीं है। वे कभी स्कन्ध बनकर अशुद्ध परिणमन करते हैं तो परमाणुरूप होकर अपनी शुद्ध अवस्थामें आ जाते हैं फिर स्कन्ध बन जाते हैं इस तरह उनका विविध परिणमन होता रहता है। जीव और पुद्गलमें वैभाविकी शक्ति है जिसके कारण वे विभाव परिणमनको भी प्राप्त होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यगतशक्ति

धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक-एक हैं। कालाणु असंख्यात हैं। प्रत्येक कालाणुमें एक-जैसी शक्तियाँ हैं। वर्तना करनेकी जितने अविभागप्रतिच्छेदवाली शक्ति एक कालाणुमें है वैसी ही दूसरे कालाणुमें। इस तरह कालाणुओंमें परस्पर शक्ति-विभिन्नता या परिणमन-विभिन्नता नहीं है।

पुद्गलद्रव्यके एक अणुमें जितनी शक्तियाँ हैं उतनी ही और वैसी ही शक्तियाँ परिणमन-योग्यता अन्य पुद्गलाणुओंमें हैं। मूलतः पुद्गल-अणुद्रव्योंमें शक्तिभेद, योग्यताभेद या स्वभावभेद नहीं है। यह तो सम्भव है कि कुछ पुद्गलाणु मूलतः स्निग्ध स्पर्शवाले हों और दूसरे मूलतः रूक्ष, कुछ शीत और कुछ उष्ण पर उनके ये गुण नियत नहीं, रूक्षगुणवाला भी स्निग्धगुणवाला बन सकता है तथा स्निग्धगुणवाला भी रूक्ष। शीत भी उष्ण बन सकता है उष्ण भी शीत। तात्पर्य यह कि पुद्गलाणुओंमें ऐसा कोई जातिभेद नहीं है जिससे किसी भी पुद्गलाणुका पुद्गलसम्बन्धी कोई परिणमन न हो सकता हो। पुद्गलद्रव्यके जितने भी परिणमन हो सकते हैं उन सबकी योग्यता और शक्ति प्रत्येक पुद्गलाणुमें स्वभावतः है, यही द्रव्यशक्ति कहलाती है। स्कन्ध-अवस्थामें पर्यायशक्तियाँ विभिन्न हो सकती हैं। जैसे किसी अग्निस्कन्धमें सम्मिलित परमाणुका उष्णस्पर्श और तेजोरूप था, पर यदि वह अग्निस्कन्धसे जुदा हो जाय तो उसका शीतस्पर्श तथा कृष्णरूप हो सकता है। और यदि वह स्कन्ध ही भस्म बन जाय तो सभी परमाणुओंका रूप और स्पर्श आदि बदल सकते हैं।

सभी जीवद्रव्योंकी मूल स्वभावशक्तियाँ एक जैसी हैं, ज्ञानादि अनन्तगुण और अनन्त चैतन्य-परिणमनकी प्रत्येक शक्ति मूलतः प्रत्येक जीवद्रव्यमें है। हाँ, अनादिकालीन अशुद्धताके कारण उनका विकास विभिन्न प्रकारसे होता है। चाहे हो भव्य या अभव्य, दोनों ही प्रकारके प्रत्येक जीव एक-जैसी शक्तियोंके आधार हैं, शुद्ध दशामें सभी मुक्त एक-जैसी शक्तियोंके स्वामी बन जाते हैं और प्रतिसमय अखण्ड शुद्ध परिणमनमें लीन रहते हैं। संसारी जीवोंमें भी मूलतः सभी शक्तियाँ हैं। इतना विशेष है कि अभव्य-जीवोंमें केवलज्ञानादिशक्तियोंके आविर्भावकी शक्ति नहीं मानी जाती। उपर्युक्त विवेचनसे एक बात निर्विवादरूपसे स्पष्ट हो जाती है कि चाहे द्रव्य चेतन हो या अचेतन, प्रत्येक मूलतः अपनी-अपनी चेतन-अचेतन शक्तियोंका धनी है उनमें कहीं कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं है। अशुद्धदशामें अन्य पर्यायशक्तियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं और विलीन होती रहती हैं।

परिणमनके नियतत्वकी सीमा

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि द्रव्योंमें परिणमन होनेपर भी कोई भी द्रव्य सजातीय या विजातीय द्रव्यान्तररूपमें परिणमन नहीं कर सकता। अपनी धारामें सदा उसका परिणमन होता रहता है। द्रव्यगत मूल स्वभावकी अपेक्षा प्रत्येक द्रव्यके अपने परिणमन नियत हैं। किसी भी पुद्गलाणुके वे सभी पुद्गलसम्बन्धी परिणमन प्रतिसमय हो सकते हैं और किसी भी जीवके जीवसम्बन्धी अनन्त परिणमन। यह तो संभव है कि कुछ पर्यायशक्तियोंसे सीधा सम्बन्ध रखनेवाले परिणमन कारणभूत पर्यायशक्तिके न होनेपर न हों। जैसे प्रत्येक पुद्गलपरमाणु यद्यपि घट बन सकता है फिर भी जबतक अमुक परमाणुस्कन्ध मिट्टीरूप पर्यायको प्राप्त न होंगे तबतक उनमें मिट्टीरूप पर्यायशक्तिके विकाससे होनेवाली घटपर्याय नहीं हो सकती। परन्तु मिट्टी-पर्यायसे होनेवाली घट, सकोरा आदि जितनी पर्यायें सम्भावित हैं वे निमित्तके अनुसार कोई भी हो सकती हैं। जैसे जीवमें मनुष्यपर्यायमें आँखसे देखनेकी योग्यता विकसित है तो वह अमुक समयमें जो भी सामने आयेगा उसे देखेगा। यह कदापि नियत नहीं है कि अमुक समयमें अमुक पदार्थको ही देखनेकी उसमें योग्यता है शेषकी नहीं या अमुक पदार्थमें उस समय उसके द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही देखे जानेकी योग्यता है, अन्यके द्वारा नहीं। मतलब यह कि परिस्थितिवश जिस पर्यायशक्तिका द्रव्यमें विकास हुआ है उस शक्तिसे होनेवाले यावत्कार्योंमेंसे जिस कार्यकी सामग्री या बलवान् निमित्त मिल जायेंगे उसके अनुसार उसका वैसा परिणमन होता जायगा। एक मनुष्य गद्दीपर बैठा है उस समय उसमें हँसना-रोना, आश्चर्य करना, गम्भीरतासे सोचना आदि अनेक कार्योंकी योग्यता है। यदि बहुरूपिया सामने आ जाय और उसकी उसमें दिलचस्पी हो तो हँसनेरूप पर्याय हो जायगी। कोई शोकका निमित्त मिल जाय तो रो भी सकता है। अकस्मात् बात सुनकर आश्चर्यमें डूब सकता है और तत्त्वचर्चा सुनकर गम्भीरतापूर्वक सोच भी सकता है। इसलिए यह समझना कि प्रत्येक द्रव्यका प्रतिसमयका परिणमन नियत है, उसमें कुछ हेर-फेर नहीं हो सकता और न कोई हेर-फेर कर सकता है, द्रव्यके परिणमनस्वभावको गम्भीरतासे न सोचनेके कारण भ्रमात्मक है। द्रव्यगत परिणमन नियत हैं अमुक स्थूलपर्यायगत शक्तियोंके परिणमन भी नियत हो सकते हैं जो उस पर्यायशक्तिके अवश्यंभावी परिणमनोंमेंसे किसी एकरूपमें निमित्तानुसार सामने आते हैं। जैसे एक अँगुली अगले समय टेढ़ी हो सकती है, सीधी रह सकती है, टूट सकती है, घूम सकती है, जैसी सामग्री और कारण-कलाप मिलेंगे उसमें विद्यमान इन सभी योग्यताओंमेंसे अनुकूल योग्यताका विकास हो जायगा। उस कारणशक्तिसे वह अमुक परिणमन भी नियत कराया जा सकता है जिसकी पूरी सामग्री अविकल हो प्रतिबन्धक कारणकी सम्भावना न हो ऐसी अन्तिमक्षणप्राप्त शक्तिसे वह कार्य नियत ही होगा पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रत्येक द्रव्यका प्रतिक्षणका परिणमन सुनिश्चित है उसमें जिसे जो निमित्त होना है नियतिचक्रके पेटमें पड़कर ही वह उसका निमित्त बना रहेगा। वह अतिसुनिश्चित है कि हरएक द्रव्यका प्रतिसमय कोई न कोई परिणमन होना ही चाहिए। पुराने संस्कारोंके परिणामस्वरूप कुछ ऐसे निश्चित कार्यकारणभाव बनाए जा सकते हैं जिनसे यह नियत किया जा सकता है कि अमुक समयमें इस द्रव्यका ऐसा परिणमन होगा ही, पर इस कारणताकी अवश्यंभाविता सामग्रीकी अविकलता तथा प्रतिबन्धककारणकी शून्यतापर ही निर्भर है। जैसे हल्दी और चूना दोनों एक जलपात्रमें डाले गये तो यह अवश्यंभावी है कि उनका लालरंगका परिणमन हो। एक बात यहाँ यह खासतौरसे ध्यानमें रखने की है कि अचेतन परमाणुओंमें बुद्धिपूर्वक क्रिया नहीं हो सकती। उनमें अपने संयोगके आधारसे क्रिया तो होती रहती है। जैसे पृथिवीमें कोई बीज पड़ा हो तो सरदी, गरमीका निमित्त पाकर उसमें अंकुर आ जायगा और वह पल्लवित, पुष्पित होकर पुनः बीजको उत्पन्न कर देगा। गरमीका निमित्त पाकर जल भाप बन जायगा। पुनः भाप सरदीका निमित्त पाकर जलके रूपमें बरसकर पृथिवीको शस्यश्यामल बना देगा। कुछ ऐसे भी अचेतन द्रव्योंके परिणमन हैं जो चेतन निमित्तसे होते हैं जैसे मिट्टीका घड़ा बनना या रुईका कपड़ा बनना। तात्पर्य यह कि अतीतके संस्कारवश वर्तमान क्षणमें जितनी और जैसी योग्यताएँ विकसित होंगी और जिनके विकासके अनुकूल निमित्त मिलेंगे, द्रव्योंका वैसा-वैसा परिणमन होता जायगा। भविष्यका कोई निश्चित कार्यक्रम द्रव्योंका बना हुआ हो और उसी सुनिश्चित अनन्त क्रमपर यह जगत् चल रहा हो, यह धारणा ही भ्रमपूर्ण है।

नियताऽनियतत्ववाद

जैन दृष्टिसे द्रव्यगत शक्तियाँ नियत हैं पर उनके प्रतिक्षणके परिणमन अनिवार्य हैं। एक द्रव्यकी उस समयकी योग्यतासे जितने प्रकारके परिणमन हो सकते हैं उनमेंसे कोई भी परिणमन जिसके कि निमित्त और अनुकूल सामग्री मिल जायगी, हो जायगा। तात्पर्य यह कि प्रत्येक द्रव्यकी शक्तियाँ तथा उनसे होनेवाले परिणमनोंकी जाति सुनिश्चित है। कभी भी पुद्गलके परिणमन जीवमें तथा जीवके परिणमन पुद्गल में नहीं हो सकते। पर प्रतिसमय कैसा परिणमन होगा, यह अनियत है। जिस समय जो शक्ति विकसित होगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा अनुकूल निमित्त मिल जायगा उसके बाद वैसा परिणमन हो जायगा। अतः नियतत्व और अनियतत्व दोनों धर्म सापेक्ष हैं। अपेक्षाभेदसे सम्भव हैं।

नियतिवाद नहीं

जो होना होगा वह होगा ही, हमारा कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है, इस तरहके निष्क्रिय नियतिवादके विचार जैनतत्त्वस्थितिके प्रतिकूल हैं। जो द्रव्यगत शक्तियाँ नियत हैं उनमें हमारा कोई पुरुषार्थ नहीं, हमारा पुरुषार्थ तो कोयलेकी हीरापर्यायके विकास करानेमें है। यदि कोयलेके लिए उसकी हीरापर्यायके विकासके लिए आवश्यक सामग्री न मिले तो या तो वह जलकर भस्म बनेगा या फिर खानिमें ही पड़े-पड़े समाप्त हो जायगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसमें उपादान शक्ति नहीं है उसका परिणमन भी निमित्तसे हो सकता है या निमित्तमें यह शक्ति है जो निरुपादानको परिणमन करा सके।

उभय कारणोंसे कार्य

कार्योत्पत्तिके लिए दोनों ही कारण चाहिए उपादान और निमित्त; जैसा कि स्वामी समन्तभद्रने कहा है कि "यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः" अर्थात् कार्य बाह्य-आभ्यन्तर दोनों कारणोंसे होता है। यही अनाद्यनन्त वैज्ञानिक कारण-कार्यधारा ही द्रव्य है जिसमें पूर्वपर्याय अपनी सामग्रीके अनुसार सदृश, विसदृश, अर्धसदृश, अल्पसदृश आदिरूपसे अनेक पर्यायोंकी उत्पादक होती है। मान लीजिए एक जलबिन्दु है उसकी पर्याय बदल रही है, वह प्रतिक्षण जलबिन्दु रूपसे परिणमन कर रही है पर यदि गरमीका निमित्त मिलता है तो तुरन्त भाप बन जाती है। किसी मिट्टीमें यदि पड़ गई तो सम्भव है पृथिवी बन जाय। यदि साँपके मुँहमें चली गई जहर बन जायगी। तात्पर्य यह कि एकधारा पूर्व-उत्तर पर्यायोंकी बहती है उसमें जैसे-जैसे संयोग होते जायेंगे उसका उस जातिमें परिणमन हो जायगा। गङ्गाकी धारा हरिद्वारमें जो है वह कानपुरमें नहीं और कानपुरकी गटर आदिका संयोग पाकर इलाहाबादमें बदली और इलाहाबादकी गन्दगी आदिके कारण काशीकी गङ्गा जुदी ही हो जाती है। यहाँ यह कहना कि "गङ्गाके जलके प्रत्येक परमाणुका प्रतिसमयका सुनिश्चित कार्यक्रम बना हुआ है उसका जिस समय परिणमन होना है वह होकर ही रहेगा" द्रव्यकी विज्ञान-सम्मत कार्यकारणपरम्पराके प्रतिकूल है।

'जं जस्स जम्मि' आदि भावनाएँ हैं

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें सम्यग्दृष्टिके चिन्तनमें ये दो गाथाएँ लिखी हैं—

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं व अहव मरणं वा॥ ३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को चालेदुं सक्को इंदो वा अह जिणिं वा॥ ३२२॥

अर्थात् जिसका जिस समय जहाँ जैसे जन्म या मरण होना है उसे इन्द्र या जिनेन्द्र कोई भी नहीं टाल सकता, वह होगा ही।

इन गाथाओंका भावनीयार्थ यही है कि जो जब होना है, होगा, उसमें कोई किसीका शरण नहीं है आत्मनिर्भर रहकर जो आवे वह सहना चाहिए। इस तरह चित्तसमाधानके लिए भाई जानेवाली भावनाओंसे वस्तुव्यवस्था नहीं हो सकती। अनित्यभावनामें हो कहते हैं कि जगत् स्वप्नवत् है इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि शून्यवादियोंकी तरह जगत् पदार्थोंकी सत्तासे शून्य है बल्कि यही उसका तात्पर्य है कि स्वप्नकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह वह आत्महितके लिए वास्तविक कार्यकारी नहीं है। यहाँ सम्यग्दृष्टिके चिन्तन-भावनामें स्वावलम्बनका उपदेश है। उससे पदार्थव्यवस्था नहीं की जा सकती।

सबसे बड़ा अस्त्र सर्वज्ञत्व

नियतिवादी या तथोक्त अध्यात्मवादियोंका सबसे बड़ा तर्क है कि सर्वज्ञ है या नहीं? यदि सर्वज्ञ है तो वह त्रिकालज्ञ होगा अर्थात् भविष्यज्ञ भी होगा। फलतः वह प्रत्येक पदार्थका अनन्तकाल तक प्रतिक्षण जो होना है उसे ठीकरूपमें जानता है। इस तरह प्रत्येक परमाणुकी प्रतिसमयकी पर्याय सुनिश्चित है उनका परस्पर जो निमित्तनैमित्तिकजाल है वह भी उसके ज्ञानके बाहिर नहीं है। सर्वज्ञ माननेका दूसरा अर्थ है नियतिवादी होना। पर, आज जो सर्वज्ञ नहीं मानते उनके सामने हम नियतिचक्रको कैसे सिद्ध कर सकते हैं? जिस अध्यात्मवादके मूलमें हम नियतिवादको पनपाते हैं उस अध्यात्मदृष्टिसे सर्वज्ञता व्यवहारनयकी अपेक्षासे है। निश्चयनयसे तो आत्मज्ञतामें ही उसका पर्यवसान होता है जैसा कि स्वयं आचार्य कुन्दकुन्दने नियमसार (गा. १५८) में लिखा है—

"जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवलणाणो जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥"

अर्थात् केवली भगवान् व्यवहारनयसे सब पदार्थोंको जानते, देखते हैं। निश्चयसे केवलज्ञानी अपनी आत्माको जानता, देखता है।

अध्यात्मशास्त्रमें निश्चयनयकी भूतार्थता और परमार्थता व्यवहारनयकी अभूतार्थतापर विचार करनेसे तो अध्यात्मशास्त्रमें पूर्णज्ञानका पर्यवसान अन्ततः आत्मज्ञानमें ही होता है। अतः सर्वज्ञत्वकी दलीलका अध्यात्मचिन्तनमूलक पदार्थव्यवस्थामें उपयोग करना उचित नहीं है।

नियतिवादमें एक ही प्रश्न एक ही उत्तर

नियतिवादमें एक ही उत्तर है 'ऐसा ही होना था, जो होना होगा सो होगा ही' इसमें न कोई तर्क है, न कोई पुरुषार्थ और न कोई बुद्धि। वस्तुव्यवस्थामें इस प्रकारके मृत विचारोंका क्या उपयोग? जगत्में विज्ञानसम्मत कार्यकारणभाव है। जैसी उपादानयोग्यता और जो निमित्त होंगे तदनुसार चेतन-अचेतनका परिणमन होता है। पुरुषार्थ निमित्त और अनुकूल सामग्रीके जुटानेमें है। एक अग्नि है पुरुषार्थी यदि उसमें चन्दनका चूरा डाल देता है तो सुगन्धित धुआँ निकलेगा, यदि बाल आदि डालता है तो दुर्गन्धित धुआँ उत्पन्न होगा। यह कहना कि चूराको उसमें पड़ना था, पुरुषको उसमें डालना था, अग्निको उसे ग्रहण करना ही था। इसमें यदि कोई हेर-फेर करता है तो नियतिवादीका वही उत्तर कि 'ऐसा ही होना था'। मानो जगत्के परिणमनोंको 'ऐसा ही होना था' इस नियति भगवतीने अपनी गोदमें ले रखा हो।

अध्यात्मकी अकर्तृत्व भावनाका उपयोग

तब अध्यात्मशास्त्रकी अकर्तृत्वभावनाका क्या अर्थ है? अध्यात्ममें समस्त वर्णन उपादानयोग्यताके आधारसे किया गया है। निमित्त मिलानेपर यदि उपादानयोग्यता विकसित नहीं होती, कार्य नहीं हो सकेगा। एक ही निमित्त-अध्यापकसे एक छात्र प्रथम श्रेणीका विकास करता है जबकि दूसरा द्वितीय श्रेणीका और तीसरा अज्ञानीका अज्ञानी बना रहता है। अतः अन्ततः कार्य अन्तिमक्षणवर्ती उपादानयोग्यतासे ही होता है। हाँ, निमित्त उस योग्यताको विकासोन्मुख बनाते हैं, तब अध्यात्मशास्त्रका कहना है कि निमित्तको यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहङ्कार नहीं होना चाहिए कि हमने उसे ऐसा बना दिया, निमित्तकारणको सोचना चाहिए कि इसकी उपादानयोग्यता न होती तो मैं क्या कर सकता था अतः अपनेमें कर्तृत्वजन्य अहङ्कारके निवृत्तिके लिए उपादानमें कर्तृत्वकी भावनाको दृढमूल करना चाहिए ताकि परपदार्थकर्तृत्वका अहङ्कार हमारे चित्तमें आकर रागद्वेषकी सृष्टि न करे। बड़ेसे बड़ा कार्य करके भी मनुष्यको यही सोचना चाहिए कि मैंने क्या किया ? यह तो उसको उपादानयोग्यताका ही विकास है मैं तो एक साधारण निमित्त हूँ। 'क्रिया ही द्रव्यं विनयति नाद्रव्यं' अर्थात् क्रिया योग्यमें परिणमन कराती है, अयोग्यमें नहीं। इस तरह अध्यात्मकी अकर्तृत्वभावना हमें वीतरागताकी ओर ले जानेके लिए है। न कि उसका उपयोग नियतिवादके पुरुषार्थ विहीन कुमार्गपर ले-जानेको किया जाय।

समयसारमें निमित्ताधीन उपादान परिणमन

समयसार (गा० ८६-८८) में जीव और कर्मका परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बताते हुए लिखा है कि—

"जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु कत्ता आदा सएण भावेण॥
पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥"

अर्थात् जीवके भावोंके निमित्तसे पुद्गलोंकी कर्मरूप पर्याय होती है और पुद्गलकर्मोंके निमित्तसे जीव रागादिरूपसे परिणमन करता है। इतना समझ लेना चाहिए कि जीव उपादान बनकर पुद्गलके गुणरूपसे परिणमन नहीं कर सकता और न पुद्गल उपादान बनकर जीवके गुणरूपसे परिणति कर सकता है। हाँ, परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके अनुसार दोनोंका परिणमन होता है। इस कारण उपादानदृष्टिसे आत्मा अपने भावोंका कर्त्ता है पुद्गलके ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्मात्मक परिणमनका कर्त्ता नहीं है।

इस स्पष्ट कथनसे कुन्दकुन्दाचार्यकी कर्तृत्व-अकर्तृत्वकी दृष्टि समझमें आ जाती है। इसका विशद अर्थ यह है कि प्रत्येक द्रव्य अपने परिणमनमें उपादान है। दूसरा उसका निमित्त हो सकता है, उपादान नहीं। परस्पर निमित्तसे दोनों उपादानोंका अपने-अपने भावरूपसे परिणमन होता है। इसमें निमित्तनैमित्तिक-भावका निषेध कहाँ है ? निश्चयदृष्टिसे परनिरपेक्ष आत्मस्वरूपका विचार है उसमें कर्तृत्व अपने उपयोगरूपमें ही पर्यवसित होता है। अतः कुन्दकुन्दके मतसे द्रव्यस्वरूपका अध्यात्ममें वही निरूपण है जो आगे समन्तभद्रादि आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें बताया है।

मूलमें भूल कहाँ ?

इसमें कहाँ मूलमें भूल है ? जो उपादान है वह उपादान है, जो निमित्त है वह निमित्त ही है। कुम्हार घटका कर्त्ता है, यह कथन व्यवहार हो सकता है। कारण, कुम्हार वस्तुतः अपनी हलन-चलनक्रिया तथा अपने घट बनानेके उपयोगका ही कर्त्ता है, उसके निमित्तसे मिट्टीके परमाणुमें वह आकार उत्पन्न हो जाता है। मिट्टीको घड़ा बनना ही था और कुम्हारके हाथ वैसा होना ही था और हमें उसकी व्याख्या ऐसी करनी ही थी, आपको ऐसा प्रश्न करना ही था और हमें यह उत्तर देना ही था। ये सब बातें न अनुभव सिद्ध कार्य-कारणभावके अनुकूल ही हैं और न तर्कसिद्ध।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय और व्यवहार

निश्चयनय वस्तुकी परनिरपेक्ष स्वभूत दशाका वर्णन करता है। वह यह बतायगा कि प्रत्येक जीव स्वभावसे अनन्तज्ञान-दर्शन या अखण्ड चैतन्यका पिण्ड है। आज यद्यपि वह कर्मनिमित्तसे विभाव परिणमन कर रहा है पर उसमें स्वभावभूत शक्ति अपने अखण्ड निर्विकार चैतन्य होनेकी है। व्यवहारनय परसापेक्ष अवस्थाओंका वर्णन करता है। वह जहाँ आत्माको पर-घटपटादि पदार्थोंके कर्तृत्वके वर्णनसम्बन्धी लम्बी उड़ान लेता है वहाँ निश्चयनय रागादि भावोंके कर्तृत्वको भी आत्मकोटिसे बाहर निकाल लेता है और आत्माको अपने शुद्ध भावोंका ही कर्त्ता बनाता है, अशुद्ध भावोंका नहीं। निश्चयनयकी भूतार्थताका तात्पर्य यह है कि वही दशा आत्माके लिए वास्तविक उपादेय है, परमार्थ है, यह जो रागादिरूप विभावपरिणति है यह अभूतार्थ है अर्थात् आत्माके लिए उपादेय नहीं है इसके लिए वह अपरमार्थ है, अग्राह्य है।

निश्चयनयका वर्णन हमारा लक्ष्य है

निश्चयनय जो वर्णन करता है कि मैं सिद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निर्विकार हूँ, निष्कषाय हूँ, यह सब हमारा लक्ष्य है। इसमें 'हूँ' के स्थानमें 'हो सकता हूँ', यह प्रयोग भ्रम उत्पन्न नहीं करेगा। वह एक भाषाका प्रकार है। जब साधक अपनी अन्तर्जल्प अवस्थामें अपने ही आत्माको सम्बोधन करता है कि हे आत्मन्! तू तो स्वभावसे सिद्ध है, बुद्ध है, वीतराग है, आज फिर यह तेरी क्या दशा हो रही है तू कषायी और अज्ञानी बना है। यह पहला 'सिद्ध है बुद्ध है' वाला अंश दूसरे 'आज फिर तेरी क्या दशा हो रही है तू कषायी अज्ञानी बना है' इस अंशसे ही परिपूर्ण होता है।

इसलिए निश्चयनय हमारे लिए अपने द्रव्यगतमूलस्वभावकी ओर संकेत कराता है जिसके बिना हम कषायपङ्कसे नहीं निकल सकते। अतः निश्चयनयका सम्पूर्ण वर्णन हमारे सामने कागजपर मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ टँगा रहे ताकि हम अपनी उस परमदशाको प्राप्त करनेकी दिशामें प्रयत्नशील रहें। न कि हम तो सिद्ध हैं कर्मोंसे अस्पृष्ट हैं यह मानकर मिथ्या अहङ्कारका पोषण करें और जीवनचारित्र्यसे विमुख हो निश्चयैकान्तरूपी मिथ्यात्वको बढ़ावें।

ये कुन्दकुन्दके अवतार

सोनगढ़में यह प्रवाद है कि श्रीकानजीस्वामी कुन्दकुन्दके जीव हैं और वे कुन्दकुन्दके समान ही सद्गुरुरूपसे पुजते हैं। उन्हें सद्गुरुभक्ति ही विशिष्ट आकर्षणका कार्यक्रम है। यहाँसे नियतिवादकी आवाज अब फिरसे उठी है और वह भी कुन्दकुन्दके नामपर। भावनीय पदार्थ जुदा हैं उनसे तत्त्वव्यवस्था नहीं होती यह मैं पहले लिख चुका हूँ। यों ही भारतवर्षने नियतिवाद और ईश्वरवादके कारण तथा कर्मवादके स्वरूपको ठीक नहीं समझनेके कारण अपनी यह नितान्त परतन्त्र स्थिति उत्पन्न कर ली थी। किसी तरह अब नव-स्वातन्त्र्योदय हुआ है। इस युगमें वस्तुतत्त्वका वह निरूपण हो जिससे सुन्दर समाजव्यवस्था-घटक व्यक्तिका निर्माण हो। धर्म और अध्यात्मके नामपर और कुन्दकुन्दाचार्यके सुनामपर आलस्य-पोषक नियतिवादका प्रचार न हो। हम सम्यक् तत्त्वव्यवस्थाको समझें और समन्तभद्रादि आचार्योंके द्वारा परिशीलित उभयमुखी तत्त्व-व्यवस्थाका मनन करें।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org